Indian J. Soc. & Pol. 07 (01):77-82:2020 **ISSN: 2348-0084(P)**
ISSN: 2455-2127(O)

संयुक्त प्रान्त में रेल व्यवस्था का मूल्यांकन : (1860–1914)

रमेश कुमार[1]

[1]असिस्टेंट प्रोफेसर इतिहास, हंडिया, पी0जी0 कॉलेज, हंडिया, प्रयागराज, उ0प्र0 भारत

ABSTRACT

प्रस्तुत शोधपत्र में यह जानने का प्रयास किया गया है कि ब्रिटिश सरकार द्वारा संयुक्त प्रान्त में निर्मित रेलवे को विकास का लाभ किसे प्राप्त हुआ? 1884 से यह प्रश्न बार–बार उठाया जा रहा था कि रेलों का उद्देश्य किनके हितों की सेवा करता है? भारतीय को यह विश्वास नहीं हो रहा था कि उनके शासक भारतीयों के हितसाधन की भावना से इस कार्य में लगे है। उनका मत था कि ब्रिटेश के उद्देश्य वास्तव में कुल मिलाकर निम्नतर के कलुषित और स्वार्थपूर्ण थे। ये प्रयोजन अपने तात्विक रुप में उन ब्रिटिश व्यापारियों, उत्पादकों और निवेशकों के हितों की पूर्ति करते हैं जिनके निरन्तर दबाव के अंतर्गत भारतीय राजस्व के व्यय और खतरे के मूल्य पर रेलों का निर्माण किया गया है और किया जा रहा है। रेल नेटवर्क का जाल बिछाने का उद्देश्य ब्रिटिश उद्यम को भारत के या संयुक्त प्रान्त के प्राकृतिक साधनों के शोषण में सहायता देना ही है। सरकारी रेल नीति के प्रवर्तन में विदेशी व्यापार के तहत इग्लैण्ड के इस्पात उद्योग के सामान की, रेलवे भंडारों, लोहे की पटरियों, इंजिन, डिब्बे और दूसरी मशीनों तथा संयत्र के निर्यातों के द्वारा निकासी की व्यवस्था स्थाापित की गयी थी। रेलें असंख्य अंग्रेजों को निदेशक से लेकर टिकट वसूलने वाले तक के रूप में लाभप्रद नौकरियों की सुविधाएं भी जुटाती थी। कम्पनी के स्वामित्व वाली दोनो रेलें फालतू ब्रिटिश पूँजी के सुरक्षित और लाभप्रद निवेश के स्रोत के रुप में कार्य कर रही थी और इस दिशा में प्रवृत्त भी है। जैसाकि 1898 में जी0एस0 अय्यर ने कहा था : ''इग्लैण्ड के निवेशक, कम्पनी के उन्नायक, धनकुबेर, लोहाद्यिपति, कोयला स्वामी, रेलवे इंजीनियर और निदेशक तथा इन सबसे बढ़–चढ़कर अपनी पेंशन में महत्वपूर्ण वृद्धि की इच्छा रखने वाले सेवानिवृत्त ऐंग्लो भारतीय कर्मचारी, सबके सब भारत में रेलों के निर्माण को द्रूतगति देने में रुचि रखते थे। वे यूरोपीय व्यापारी भी जिनके हाथ में भारत का सारा विदेशी व्यापार है और जिनका व्यापार अब समुद्र के तटवर्ती नगरों तक सीमित न रहकर भारत के ग्राम प्रांतो में फैलते जा रहे थे।'' अब भारतीयों के हितों की बलि चढ़ाकर रेलों के सारे लाभ इग्लैंण्ड उठाता है और उनके भार को भारत के प्रान्त उठाते थे। इससे यह प्रतीत हो रहा था कि ''पैतृक दायित्व'' के नाम पर ब्रिटिश शासक उस देश की सहायता कर रहे थे जिसे कम से कम भारत की महान दुर्भाग्यग्रस्त निर्भरता को भी शक्तिहीन करने के मूल्य पर उसकी आवश्यकता कदापि नहीं थी।

KEY WORDS: *संयुक्त प्रांत, रेल, ब्रिटिश भारत, परिवहन, इतिहास*

1847 में भारतीय रेल तंत्र केवल एक विचार था। उस समय जब एक संगठित राजनैतिक इकाई के रूप में भारत का विचार भी एक काल्पनिक तथ्य था। लेकिन जब भारत ने समय के अनुसार ब्रिटिश क्राउन के अन्तर्गत एक परिभाषा योग्य राजनैतिक ईकाई का रूप लिया और तब 1947 में यह स्वतंत्र गणराज्य बना। वास्तव में यह रेलवे ही थी जिसने देश को एक साथ बॉधा। रेलवे ने भारत को एक कार्यकारी और पहचान योग्य संरचना और राजनैतिक तथा आर्थिक सत्ता के रूप में उस समय बॉधा जब अन्य दूसरी ताकतें एकता के विरूद्ध संगठित हो रही थी। अपने स्वयं के आंतरिक तर्क से होकर उनकी गति का रूपान्तरण और नयी गतिशीलता जिसने कि आर्थिक परिवर्तनों को सम्भव बनाया, रेलवे ने कुछ हद तक भारतीय जीवनशैली को राजनीतिज्ञों की योजनाओं और उद्यमों की इच्छाओं से असम्बद्ध रहते हुए बदल डाला।

भारतीय रेलवे की यात्राओं जो प्रारंभिक वर्षों में अनिश्चित और सावधान थी ने जल्दी ही गति पकड़ ली एक देश के लिए जो अभी औद्योगिक क्रान्ति की परिवर्तकारी ताकतों को छुआ ही था बम्बई से थाणे के बीच 34 किमी मार्ग की सेवा जिसने पहली उद्घाटन दौड़ 10 अप्रैल, 1853 को 45 मिनट में पूरी की, होने वाले परिवर्तन के परिणाम का प्रतीक था। नये रेलमार्ग ने अभियांत्रिकी की कठिन भौगोलिक बाधाओं के ऊपर विजय को प्रदर्शित किया और इयान जे0 कैर के शब्दों में उस प्रथम यात्रा में यह अनेक अन्तः सम्बद्ध आर्थिक, राजनैतिक, सामाजिक और पर्यावरणीय परिवर्तनों जो कि आधुनिक भारत में लाये गये–संगठनात्मक और तकनीकी केन्द्र हो गया।(फ्रिट्ज,1947) पूँजी के लिए जलमार्गों और सिंचाई से प्रतिर्स्पधा करने के बावजूद रेलवे सम्पर्क जाल की जटिलता और इसकी प्रसार की तीव्रता उस समय विश्व के किसी भी भाग से अतुलनीय थी जिसे उत्तर दिशा में इलाहाबाद और कानपुर के बीच 192 कि0मी0 लम्बे मार्ग पर यातायात 3 मार्च 1859 को खोला गया। 1881 तक रेलवे नेटवर्क हाथरस मार्ग–मथुरा छावनी और कानपुर–फर्रूखाबाद सम्भागों से होते हुए उत्तर–पश्चिमी दिशा में प्रवेश कर गया। रेलवे के आने के पूर्व संयुक्त प्रान्त की आर्थिक राजनैतिक और सामाजिक समस्याओं का कारण इस क्षेत्र की संचार की खराब व्यवस्था का होना था। इस क्षेत्र की मुख्य आर्थिक समस्या इस दृष्टिकोण से बाह्य और आंतरिक दोनों ही क्षेत्रों में व्यापार की अविकसित दशा थी इस व्यापार का मुख्य चैनल गंगा नदी था। बंगाल और बिहार के आंतरिक व्यापार का एक बड़ा भाग और इनके तथा पश्चिमी प्रांतो के सम्पूर्ण समुद्री व्यापार का बडा भाग उसी गंगा चैनल पर केन्द्रित था। इस मार्ग का कई सामाजिक लाभ भी था क्योंकि यह विभिन्न उद्देश्यों की पूर्ति के लिए लोगों के हित में थी। यह मार्ग सैनिक और प्रशासनिक दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण था क्योंकि उत्तरी भारत की प्रशासनिक और सैनिक समस्यायें बहुत जटिल और ज्यादा थी और समय–समय पर होने वाली स्थानीय प्रशासनिक और सैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति करने के कारण रेलमार्ग का विस्तार दिल्ली तक करना था जिससे इस प्रांत की उपयोगिता बढ़ गयी थी।

भारत में नयी बनी रेलवे ने परिवहन के गति में और इसकी विश्वसनीयता में वृद्धि की। कई मामलों में यह काफी ज्यादा घटी

1: Corresponding Author

दरों पर था। यह उस देश के लिए बड़ा परिवर्तन था जो प्रचलन के लिए नदी से सम्बद्धित तरीकों पर आश्रित था। नदियॉ जो कि मानसून के द्वारा पोषित थी और अस्थायी रूप से नौवहन योग्य थी में यह कार्य वर्ष में अनेकों बार असम्भव हो जाता था जब नदियों में पानी कम हो जाता, बैलगाड़ियॉ धीमी खर्चीली और अविश्सनीय थी। प्रचलन में यह अन्तराल ही था जिसे रेलवे ने तेजी से भरा जैसा कि उस समय दूसरे देशों ने भी किया। अब रेलवे ने क्षेत्रीय बाजारों से बाहर खाद्यानों और दूसरी कृषि उत्पादों में बराबरी लायी क्योंकि भारतीय उत्पादकों के लिए अंतर्राष्ट्रीय बाजार उपलब्ध हो जाने के कारण कृषि का विस्थापन अखाद्य अनाजों या नकदी फसलों की ओर हो रहा था। मिसील मैक एल्पीन के सांख्यिकी विश्लेषण द्वारा यह प्रदर्शित किया गया है कि कृषि योग्य भूमि का जो विस्थापन नकदी फसलों की ओर हो गया था उसकी पूर्ति उस अनाज द्वारा की गयी जो कि अगले वर्ष बोने के लिए अथवा फसल खराब होने की दशा के लिए संग्रहीत किया गया था। हालांकि रेलवे ने राष्ट्रीय बाजार को जन्म दिया लेकिन आवश्यक रुप से खाद्यान्नों को सस्ता नहीं किया विशेष रुप से संयुक्त प्रान्त के उपज वाले क्षेत्र में रेलवे ने कीमतों को बढ़ाया ही परन्तु उसे स्थिर नहीं किया।

1881 में केवल दो मार्ग ईस्ट इण्डिया रेलवे और ग्रेट इण्डियन पेनिसुला रेलवे थे जो 1881 की सम्पूर्ण निवल आय का 56 प्रतिशत से अधिक प्रबंधित करते थे। इसने भेदभाव भरे मूल्य निर्धारण की कुछ प्रचालनों (लम्बी दूरी के भाड़ा वाहकों विशेषतया बन्दरगाहों को) कुछ दूसरे (छोटी दूरी के यातायात शाखा मार्ग उपभोक्ताओं, प्रचालन जो कि दो या अधिक रेल मार्गों से सम्बद्ध थे) की कीमत पर लाभ पहुँचाते थे, के विरोध का मार्ग प्रशस्त किया। रेलवे कम्पनियों के बीच प्रतिस्पर्धा ने आगत–ढुलाई (प्रचालन के लिए कोयला) को कुछ कम्पनियों के द्वारा अपनी प्रतिद्वंदी कम्पनियों के लिए इतना प्रतिबंधित कर दिया गया कि केवल इसी आधार पर रेलवे कम्पनियों के बीच प्रचालन मूल्य काफी ज्यादा अन्तर कर सकता था। 1890 तक रेल क्षमता में सुधार बढ़ती हुयी ईंधन मितव्यीयता कार्य शक्ति के बढ़ते भारतीयकरण और बेहतर मूल्य निर्धारण संरचना के साथ परम्परागत परिवहन अवस्थाओं के साथ अधिकांशतः –प्रतियोगिता समाप्त हो गयी। उस समय तक वस्तुओं की स्टेशन से स्टेशन की दरें और ईंधन उपभोग में मितव्ययिता के अभियानों जो दोनों मूल्य भेदभाव और मितव्ययिता के मानदण्ड थे और जो रेलवे प्रचलन के प्रारंभिक दिनों में शुरू किए गए थे अभी भी महत्वपूर्ण मानदण्ड रहे जिन पर रेलवे प्रबन्धन किसी निश्चित यातयात में वृद्धि करने के लिए और प्रचालन लागत घटाने के लिए केन्द्रित करता था।

भारत में रेलवे अनेक देशों जहॉ रेलवे नेटवर्क ने प्रवेश किया था कि तुलना में भिन्न स्थिति में था। ब्रिटेन के लिए रेल मार्गों का निर्माण ने इस्पात उत्पादन और कोयला खनन के उद्योग में बड़ी पूँजी के आगत के साथ इसकी औद्योगिक क्रान्ति के नये चरण की शुरूआत की। इस प्रकार इस सम्बद्ध में भारत में रेल मार्ग का निर्माण पूँजी और शोषित करने की अपनी बड़ी क्षमता के साथ और बनाने की क्षमता में सहयोगी होने के साथ ब्रिटिश वाणिज्य घाटे को संतुलित करने में काफी महत्वपूर्ण भूमिका में था, लेकिन भारत के लिए इस परिप्रेक्ष्य का मतलब यह था कि रेलवे को सर्वप्रथम उस साम्राज्यवादी मॉग को पूरा करना था जिसने इसको अस्तित्व में लाया था। इसलिए यह स्वाभाविक ही था कि कम से कम अपने प्रारम्भिक वर्षों में सरकार के लिए चिन्ता का प्राथमिक विषय घरेलू अर्थव्यवस्था का सुधार करना नहीं था, इसलिए यह आश्चर्यजनक नहीं था कि रेलवे और अर्थव्यवस्था के दूसरे महत्वपूर्ण क्षेत्रों के बीच सम्पर्क ज्यादा प्रभावशाली नहीं था। प्रमुखतया भारतीय उद्योग और उत्पादन में रेल मार्गों से उतनी उछाल नहीं पायी जितनी कि इससे परिचित हो चुकी दूसरी अर्थव्यवस्थाओं ने पायी थी। इसके लिए अनेक कारण थे। पहला यह था कि भारत के रेलवे में लगी हुयी अधिकांश आगत जो इंजनों, उपकरणों, पुलों और संरचनाओं के लिए इस्पात, पटरियॉ, स्लीपरों में से अधिकांश देश के बाहर से मगाये जाते थे। कुछ समय के बाद इनमें से कुछ आगते जैसे कि स्लीपर, बोल्ट इत्यादि घरेलू स्तर पर बनाये जाने लगे और अधिक तकनीकी दक्षता वाले समान जैसे कि इंजन आदि अभी भी ब्रिटेन से मंगाये जाते थे।[3] प्रारम्भिक वर्षों में इंजन निर्माण के घरेलू प्रयास मानक प्रकार की स्वीकृति के द्वारा नकारे गये या कम से कम रोके गये। जिसका मतलब यह था कि गैर प्रमाणिक इंजन बनाने के लिए विशेष अनुमति की आवश्यकता थी। हालांकि यहॉ कुछ निश्चित परिवर्तन रेलवे तकनीक अपने उत्पादन के स्तर के जितना ही वृहत्त स्तर पर मरम्मत और रखरखाव की सुविधाएँ चाहती थी इसलिए प्रारम्भ से रेलवे नेटवर्क में प्रचलन भंडार की मरम्मत और रखरखाव के लिए बड़े पैमाने पर कारखानों, रोडों और दुकानों का विस्तार हुआ।

प्रारम्भ में सम्पूर्ण शीर्ष प्रबन्धन ने भौतिक आधारभूत ढॉचे और सम्पर्क जाल में अधिकांशतः गैर भारतीयों को रखते हुयी परम्परा बनायी रखी। लेकिन बढ़ते हुए घरेलू और आर्थिक दबाव के कारण इस क्षेत्र में भी भारतीयकरण प्रारम्भ हो गया। हालांकि कर्मचारियों को दी जाने वाली सुविधाओं और वेतन ढॉचों का निर्धारण में जाति एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती थी। जब नौकरियॉ भारतीयों के लिए खुलना प्रारम्भ हो गयी तब भारतीय जनसंख्या के एक विशेष वर्ग को मध्यस्तरीय स्थानों (इंजन चालकों, लिपिकों और स्टेशन मास्टरों) के रूप में वरीयतादी गयी। ये बॅटवारे केवल जाति पर ही आधारित नहीं थे बल्कि श्रेणियों और मजदूरों की भाषागत और स्थानीय स्थिति[6] पर भी निर्भर थी। विश्व के दूसरे भागों की तरह मार्ग के निर्माण में लगी श्रम शक्ति पूर्णतया भारतीय थी। निर्माण कार्य की तीव्रता और उच्च स्तरों जो कि निश्चित पूर्णकारी अवधि के साथ जुड़े हुए थे ने श्रमिकों की गतिशीलता को प्रेरित किया। किन्तु कर्मशालाओं में उपलब्ध सुविधाओं का भारतीयों को प्रशिक्षित करने के लिए समुचित उपयोग नहीं किया गया। भारतीयों पर अंग्रेजी निर्भरता बाबू टी0एन0 मुखर्जी जो बैरंगी शिकारपुर परियोजना के सर्ववेक्षक थे द्वारा दी गयी आख्या के द्वारा दर्शाया गया है– "जो नक्शा हमने पाया वह विश्वसनीय नहीं था, बारिस और ओलावृष्टि कुछ दिनों पढ़ती थी और हमारे तम्बुओं को उड़ा ले जाती थी और पूरी रात पानी के नीचे रहना पड़ता था क्योंकि कोई निवास स्थान बनाने योग्य नहीं था। दो चादरें टुकड़ों में फट गयी और घंटाकार तम्बू और स्वीस कॉटेज पेड़ों के गिरने के कारण नष्ट हो गयी। भीषण गर्मी के कारण पर्ववेक्षक ठीक ढंग से कार्य नहीं कर पाते थे, अच्छा पानी उपलब्ध नहीं था उसका रंग कुछ समय पीला या खारा इत्यादि होता था जो हमें पीना पड़ता था। गॉव में चेचक और दूसरी बीमारियॉ तेजी से बढ़ रही थी। लेकिन ईश्वर की कृपा से हमने सर्ववेक्षण सुरक्षापूर्वक समाप्त कर लिय। जबकि निर्माणतंत्र के सबसे निचले सिरे पर श्रमिकों की दशा दयनीय थी राबर्ट जी वारडे ने अपनी पुस्तक "बनारस में संस्कृति और शक्ति" में लिखा है– "अल्प स्थानों में रखे गये अल्पपोषित और अत्यधिक कार्यरत ये श्रमिक सामान्यतया बीमार रहते थे, सड़क और रेल श्रमिक दलों में महामारियॉ प्रायः और विनाशकारी थी। दस हजार के श्रमिकों के कैम्पों के ऑकड़े कहते हैं कि एक तिहाई श्रमिक कालरा और दूसरे अन्य बीमारियों से मर गये।" रेलों

ने दलदलों तथा पानी के जमाव की समस्याओं को जन्म दिया। जिससे मलेरिया बुखार फैलाने वाले मच्छरों की तादात बढ़ी। यात्रियों के आवागमन में वृद्धि से ऐसी बीमारियां फैली जिससे लोगों का पहले कोई वास्ता नहीं पड़ा था। इस प्रकार कुछ क्षेत्रों में रेलों का स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा।

मार्क्स की भविष्यवाणी के अनुसार– रेलवे ने भारत में औद्योगिक विस्तार नहीं किया। प्रारम्भ तक 1865 में भारत ने इंजन उत्पादन की स्थापना की सम्भावना दर्शायी। लेकिन रेल कम्पनियों ने इस आश्वासनकारी शुरूआत का अनुसरण नहीं किया और ब्रिटिश खरीददारी को महत्व दिया। 1942 तक ब्रिटिश रेलवे के अधिकांश अवधि तक भारत में केवल 700 इंजनों का उत्पादन किया गया और वही इसने 12 हजार इंजन इग्लैंड से खरीदे। जॉन हर्ड ने कहा कि–"रेलवे की खरीद नीतियों से भारत का घाटा केवल उसकी भारी उद्योग विकसित करने के असफलता से सम्बन्धित नहीं था, वह औद्योगिक–प्रसार जो कि भविष्य में हो सकता था के लाभों को प्राप्त करने में भी असफल रहा। इसके बदले में फैलते हुए प्रभावों ने ब्रिटिश अर्थव्यवस्था को उत्तेजित किया।''

ब्रिटेन के आर्थिक हितों को अधीन करने के लिए भारत ने स्वयं को अधीन कर लिया और यहां रेलवे को एक विदेशी और गैर भारतीय के रूप में सिद्ध किया। रेल मार्ग सैन्य दस्तों के तेज चालन को सुविधाजनक बनाने के लिए बनाया गया। 19वीं शताब्दी के अन्त में लार्ड राबर्ट्स ने तर्क दिया कि रेलवे ने भारतीय सेना के चरित्र में एक पूर्ण परिवर्तन को न्यायोचित सिद्ध किया। वह इसे घरेलू समस्याओं से निपटने वाली सीमित बल से, यूरोपीय–शत्रुओं से सामना करने में सक्षम लड़ाकू यंत्र में परिवर्तित करना चाहते थे। अपने लेख – "भारतीय रेल का एक इतिहास" में जी0एम0 खोसला ने प्रारम्भिक अग्रणी वर्षों के प्रति लगाव उत्तेजना को उद्धत करते हैं जिसे वह समय चक्र के द्वारा कठोरतापूर्वक सहमत स्थान से ज्यादा महत्व देते हैं हालांकि इस उपलब्धि के उत्तेजक नायक और अग्रणी नायकत्व वाली कहानी का एक दूसरा पक्ष जो कि अक्षमता, गम्भीर गलतियों, भारतीय स्थितियों और भारतीयों की उपेक्षा और प्रभाव क्षेत्र का कम विचारवान और आश्रित भेदभाव और कई बड़ी गलत आशायें, उपेक्षायें, कुप्रबन्धन और अनियमिततायें दूसरे सिरे पर थी। बेशक यह हमेशा स्पष्ट नहीं होता था कि कौन सा कार्य अंधेरे पक्ष की सत्यता में रखा जाय विशेष रुप से वहॉ किसी व्यक्तिगत उत्साह को एक क्रम में रखकर उत्साहित करना उदाहरण के तौर पर अक्षमता और जानबूझकर कुप्रबन्धन, ईमानदार– गलतियों (कितनी भी बुरी और बेईमान प्रथाओं) कितनी भी हल्की के बीच अंतर करना। कई बार अंधेरा खराब प्रबन्धन अथवा भारतीय और भारतीयों की परिस्थितियों की उपेक्षा से उत्पन्न ब्रिटिश गलतियों का परिणाम था। कई बार यह जानबूझकर की गई बेईमानी का परिणाम था। इस प्रकार रेलवे पुलों की प्रारम्भिक असफलताओं, अभियन्ताओं द्वारा कार्यबाधित की गयी थी जो यह नहीं जानते थे कि बरसात के बाद जल के ऊँचे प्रवाह को कैसे रोका जाय और पुल की नीवों को रगड़ने से रोका जा सके जब तक कि वे गिर न जाय। दूसरी तरफ कुल पुलों की असफलता विशेषतया जो कारीगरों द्वारा बनाये गये पुल और पुलिया थीं 19वीं शताब्दी में ठेकेदारों द्वारा किये गये भ्रष्टाचार से जुड़ी थी जो कि अपने लाभ को बढ़ाने के लिए कोने काट देते थे। हालांकि 1860 में ब्रिटिश अभियन्ताओं द्वारा इन असफलताओं का कारण भारतीय निर्माण सामग्री के बारे में जानकारी न होना बताया।

ज्ञान और समझ की कमी के कारण हुई गलतियों पर 19वीं शताब्दी के अंतिम चतुर्थांश पर नियंत्रण पा लिया गया। हालांकि भ्रष्टाचार, और अनियमितता अभी व्याप्त था जो शुरूआत से लेकर कभी भी नष्ट नहीं हुयी। उर्दू समाचार पत्र कर्मा जो 28 नवम्बर, 1870 में लखनऊ में प्रकाशित हुई में लिखा गया था कि – ''यात्री अधिकारिक दर से सामान्य टिकटों पर ज्यादा भुगतान करने के बारे में जागरूक नहीं थे और चीजों के परिवहन और उनके समुचित सुरक्षा करने में अनियमिततायें थीं।'' यह तब बनी रही जब तक कि रेलवे भ्रष्टाचार जॉच आयोग जो जी0बी0 कृपलानी की अध्यक्षता में 1955 में जाकर अपनी रिपोर्ट प्रकाशित नहीं की। प्रारम्भिक भारतीय रेलवे के विकास को डेनियल थार्नर द्वारा जनता के जोखिम पर निजी उद्योग के रूप में बताया जो आशा से अधिक खतरनाक रुप में दिखलायी पड़ रहा था। लम्बी अवधि में सरकार ने धीरे–धीरे कठोर ढंग से रेलवे तन्त्र को पूर्णतया सरकारी नियंत्रण के मार्ग पर बढ़ाना शुरू किया। एक–एक करके निजी प्रत्याभूत कम्पनियॉ खरीदी गयी और अंततः राज्य रेल तंत्र भाग के रूप में संचालित की गयी। इस प्रकार गलतियों और अनियमितताओं ने भारत की रेल प्रबन्ध और स्वामित्व में भारत सरकार की भूमिका को बढ़ाने में सहयोग प्रदान किया।

रेलवे अपने आरम्भिक वर्षों में काल्पनिक ढंग से हर जगह अवैध लाभ चाहने वालों के लिए लाभदायी लक्ष्य थी लेकिन यह कहना गलत होगा कि भारतीयों ने ब्रिटिश राज के रेलवे से कोई लाभ नहीं उठाया। आर्थिक इतिहासकारों द्वारा उन लाभों के ऊपर बहस किया जाता है जो रेलवे ने भारतीयों को दिया। कुछ लोग सुझाव देते हैं कि रेलवे के द्वारा ग्रामीण भारत और गरीब हुआ क्योंकि उन्होंने बाजारों को खोला जिसने पम्परागत फसल ढॉचे को नष्ट कर दिया। दूसरी ओर कृषि उत्पाद एक बड़े क्षेत्र में प्रचलन किया जिससे फसलों की मूल्यों में स्थिरता आयी और किसानों, ने कपास, जूट और दूसरी नकदी फसलों जिन्हें वे निर्यात कर सकते थे को उगाने में विशेषज्ञता हासिल करने शुरू कर दी। वे विश्व बाजारों से अच्छे मूल्य ले आये और भूमिहीन श्रमिकों को रोजगार दिया। लेकिन भारतीय बुनकरों की पीड़ादायक प्रश्न पर कोई समझौता नहीं हुआ जिसका महात्मा गॉधी द्वारा अत्यन्त बल देकर कहा गया। जॉन हर्ड ने विवाद के दोनों पक्षों को रखा–और तर्क देते हैं कि रेलवे ने हथकरघों का पतनकारित किया क्योंकि उसने भारतीय कारखानों द्वारा निर्मित वस्त्रों को जो बुनकरों द्वारा निर्मित किये गये थे से कम मूल्य पर उपलब्ध कराये। वे आगे कहते है कि हथकरघा के कपड़े की स्थिति रेलवे के द्वारा कम मूल्य के कारखाने निर्मित धागे उपलब्ध कराकर सुदृढ़ की गयी लकिन बुनकरों की संख्या नहीं घटी। मालवाहक गाड़ियों ने अकालों के दौरान राहत में सहायता की विशेषरूप से भोजन की कमी वाले क्षेत्रों के लिए विशेष मार्ग बनाये गये। रेलवे से पहले आपूर्तियॉ बैलगाड़ियों और गाड़ियों से की जाती थी और बैलों के द्वारा अनाज खा जाने से पहले नहीं पहुॅच पाती थी। 1860–61 के अकाल ने उत्तर–पश्चिम प्रान्त को भी प्रभावित किया। रेलवे का निर्माण, अकाल से पीड़ित लोगों की समस्याओं को कम करने के लिए सरकार द्वारा उठाये गये कदमों में से एक था। क्योंकि ग्राण्ट ट्रंक रोड पूरी तरह से उपयुक्त नहीं थी और कुछ भागों विशेष रूप से कानपुर, फतेहपुर और अलीगढ़ में सड़कों की स्थिति कष्टपूर्ण थी।

इस प्रकार अधिकारियों ने इस बात को माना कि रेलवे का विकास अकाल का सामना करने के लिए सर्वोत्तम आश्वासन था। यद्यपि ऐसा नहीं था कि रेलवे ने अपने साथ कोई औद्योगीकरण नहीं लायी।

कोयले के लिए रेलवे की मॉग ने खनन उद्योग में उछाल प्रदान की ट्रेनों ने डुंडी की मिलों के जूट और हुगली के किनारे स्थित मिलों के जूट का भी निर्यात किया। दूसरी एशियाई देश जापान ने उसी अवधि के दौरान औद्योगीकरण किया और रेलवे का निर्माण और प्रचालन जापानियों के लिए किया गया। जापान के ऊपर कोई ब्रिटिश या कोई विदेशी राज्य रेलवे के प्राथमिकताओं को निश्चित करने के लिए नहीं था। जबकि भारत में रेलवे भारतीयों का दमन करने के लिए बनायी गयी थी और अंततः उन्हें स्वतंत्रता प्राप्त करने में सहायता प्राप्त की। यद्यपि सम्पूर्ण भारत में सशक्त सामान्य सांस्कृतिक और धार्मिक परम्परायें थी लेकिन रेलवे के बिना भारत स्वतंत्रता के समय यूरोप और अफ्रीका के अनेक देशों की तरह संकटग्रस्त स्थिति जैसे होता। इयान जे0 कैर ने लिखा है कि "रेलवे ने भारतीय राज्य को बनाया और इस प्रकार भारतीय राष्ट्र को सम्भव बनाया।" भारत में रेलवे के प्रारम्भ के द्वितीयक प्रभाव काफी कम थे जैसे कि वह हो सकते थे। 1750 से 1850 के ब्रिटेन और 1860 से 1940 के जापान के साथ तुलना करने पर यह कहा जा सकता है कि भारत ने औद्योगीकरण जितना ऊॅचा मूल्य का भुगतान किया जबकि वह केवल एक विक्रेता के नमूने की आपूर्ति पाने में सक्षम हुआ जबकि जॉन हर्ड का कथन है कि स्वतंत्रता तक जब आर्थिक विकास एक जागरूकता बन गया और एक नीति का पालन किया गया तब रेलवे ने भारतीय अर्थव्यवस्था की परिवर्तन में सहयोग देने की अपनी क्षमता का एहसास किया।(मिश्रा एण्ड मारिया) ब्रिटेन और भारत के बीच "क्लासिकी उपनिवेशी आर्थिक सम्बन्ध" 1857 के विद्रोह के कुचले जाने के बाद ही धीरे–धीरे उभरे।(वही) माना जाता था कि भारतीय साम्राज्य अपना खर्च स्वतः उठाएगा और साथ ही देश के संसाधन साम्राज्य के उद्देश्यों के लिए उपलब्ध रहेगा। भारत को ब्रिटेन के तैयार मालों के लिए बाजार का और खेतिहर कच्चे मालों के स्रोत का काम करना था। उन्नीसवीं सदी के अन्तिम और बीसवीं सदी के आरम्भिक वर्षों तक भारत ने साम्राज्य के प्रति अपने अनेक दायित्व सफलतापूर्वक पूरे किए। वह ब्रिटेन के कपास, लोहा और इस्पात, मशीनरी आदि उद्योगों के एक बड़े बाजार का काम करता रहा। पहले विश्वयुद्ध के समय भारतवासी लंकाशायर के 85 प्रतिशत सूती कपड़ों का उपयोग कर रहे थे और ब्रिटेन के लोहा और इस्पात उत्पादन का 17 प्रतिशतः भाग भारतीय रेलवे में खपता रहा। जॉन हर्ड का कहना है कि –"भारत एक–दूसरे से और दुनिया से रेलों के द्वारा जुड़े स्थानीय केन्द्रों वाला एक राष्ट्र बना।"(हर्ड जे0 1982) लेकिन रेलें जिस तरह से बनाई गई, उसी से स्पष्ट है कि उसका मुख्य उद्देश्य भारतीय अर्थव्यवस्था की आवश्यकताओं के बजाय साम्राज्य के हितों को पूरा करना था। 1853 में डलहौजी ने मुख्यतः सेना की आवाजाही को सुचारू बनाने के लिए भारत में रेलें बनाने का निर्णय लिया। धीरे–धीरे ब्रिटिश आयातों के रास्ते सुलभ बनाने के लिए, अर्थात् अन्दरूनी बाजारों से और कच्चे मालों के स्रोतों से बन्दरगाही नगरों को जोड़ने के लिए, भारतीय बाजार के एकीकरण की एक और आवश्यकता पैदा हुयी। रेल निर्माण का मुख्य उद्देश्य भारत के अन्दरूनी इलाके के आर्थिक विकास को बढ़ावा देने की बजाय विदेशी व्यापार के हितों से भारत के अन्दरूनी इलाकों को बॉधना था। निर्माण की योजनाबन्दी ने इस लक्ष्य में साथ दिया, क्योंकि उसने बन्दरगाहों से अन्दरूनी बाजारों को जोड़ा, लेकिन अन्दरूनी बाजार के नगरों के बीच कोई सम्बन्ध स्थापित नहीं किया। पक्षपाती माल–भाड़े भी इस मंशा का संकेत करते थे; बन्दरगाओं से अन्दरूनी क्षेत्रों तक जाने वाले थोक तैयार मालों पर और अन्दरूनी क्षेत्रों से बन्दरगाहों तक जाने वाले कच्चे मालों पर विपरीत दिशा की अपेक्षा कम भाड़े लगते थे।(भट्टाचार्य) इसके अलावा रेल–निर्माण की तीव्रगति के गुणक–प्रभाव (Multiplier Effect) ने भी ब्रिटिश अर्थव्यवस्था को लाभ पहुॅचाया, क्योंकि मशीनों, रेल लाइनों के लिए लोहे का इंग्लैण्ड से आयात किया जाता था। प्रौद्योगिकी का हस्तान्तरण मामूली प्रौद्योगिकी वाले क्षेत्रों तक, जैसे प्लेट बिछाने, पुल बनाने या सुरंग खोदने तक सीमित रहा, जबकि 'हाइटेक' क्षेत्रों में आयातित प्रौद्योगिकी का कभी भारतीयकरण नहीं किया गया, ताकि "एक सच्ची राष्ट्रीय प्रौद्योगिकी का विकास हो। कुछ मिसालों में तो निर्माण–कार्य ने पर्यावरण को भी प्रभावित किया, प्राकृतिक जल निकास व्यवस्था को तबाह किया परिणामस्वरूप संयुक्त प्रान्त में उन्नीसवीं सदी में मलेरिया की महामारी को जन्म दिया।

रेलों के बारे में राष्ट्रवादी अक्सर जमानतशुदा ब्याजों की अदायगी के जरिये सम्पत्ति के निरन्तर दोहन की शिकायतें करते रहे कि इससे ढेरों फिजूल निर्माण को बढ़ावा मिलता था। रेल–निर्माण में सरकार ने भी सीधे निवेश किए, खासकर सेना की आवाजाही की आवश्यकताएॅ पूरी करने के लिए सीमा–क्षेत्रों में और "अकाल लाइनों" के लिए दुर्लभता वाले क्षेत्रों में। राष्ट्रवादियों की मुख्य आपत्ति ऐसे सार्वजनिक निवेशों के लिए प्राथमिकता के क्षेत्रों के चयन के खिलाफ थी, क्योंकि उनमें से बहुतों का विश्वास था कि ऐसे निवेश के लिए सिंचाई कहीं बेहतर क्षेत्र होती और अधिक सामाजिक लाभ देती। मुनाफों की इच्छुक उपनिवेशी सरकार के लिए स्पष्ट है कि सिंचाई में निवेश के लिए कम आकर्षण था। वही दूसरी तरह रेलवे के विस्तार से 1860 तब ब्रिटेन वनों के कटाई के मामले में विश्व नेता के रुप में उभर चुका था। चूँकि औपनिवेशिक भू–नीति का उद्देश्य ज्यादा से ज्यादा राजस्व हासिल करना था। इसने भी वनों के अत्यधिक कटाई को बढ़ावा दिया। चूँकि वनों की कटाई से राजस्व के दायरे में शामिल वनों की मात्रा में बढ़ोतरी होती थी, इसलिए उन्हें खेती के रास्ते में एक रुकावट और साम्राज्य की समृद्धि में बाधा के रुप में देखा गया।(रिवनट्राप 1900:60) कृषि नीति में मुख्य रुप से खेती के विस्तार पर बल दिया गया और इस उद्देश्य को हासिल करने के लिए उस समय 'वनों का विनाश करों' का नारा दिया गया।(स्टेविंग,1922–27:61) 1853 में रेलवे निर्माण के आरम्भिक वर्षों में यह प्रक्रिया और भी ज्यादा गहन हो गयी। रेलवे स्लीपर (दो पटरियों के बीच लगने वाली लकड़ी की फाट) की माँग को पूरा करने के लिए बड़ी मात्रा में वनों को नष्ट किया गया, और इस दौरान वनों की कटाई पर किसी तरह के रोक–टोक की व्यवस्था नहीं थी। काफी बड़ी मात्रा में वनों को बर्बाद कर दिया गया, और वे जमीन पर पड़े–पड़े बर्बाद हो गए। गढ़वाल और कुमाऊँ के उप हिमालय वनों को काटकर उजाड़ दिया गया और हजारों ऐसे वृक्षों को काटा गया, जिन्हें काटने के बाद वहाँ से हटाया नहीं गया और न ही उन्हें हटाना मुमकिन था।(पीयर्सन,1870:132–133) वनों की इस तरह से कटाई के लिए भारतीय और यूरोपीय–दोनों जगहों के ठेकेदार जिम्मेदार थे, भारतीय सामंत के वन भी उनके हाथों से नहीं बचे।(पाल,1871) जब तक रत्नागिरी के कोयले के खान ने पूरी तरह काम करना प्रारम्भ नहीं किया, तब तक रेलवे कम्पनियाँ भी अपने ईधन के लिए वनों पर निर्भर थी। 1880 के दशक में उत्तरी–पश्चिमी प्रान्तों में रेलवे को काफी ज्यादा मात्रा में ईधन के लिए लकड़ियों की आवश्यकता थी। इसके चलते दोआब में भारी मात्रा में वनों की कटाई हुई।(व्हाइटकाम्ब,1971) भारतीय अकाल आयोग के एक सदस्य ने यह लिखा है कि रेलवे के लिए ''ईधन की माँग काफी ज्यादा थी। इसके चलते जिन खास वनों से लकड़ियाँ की आपूर्ति हो रही थी, वे भले ही पूरी तरह से विनष्ट नहीं हुई, लेकिन उनकी स्थिति काफी कमजोर हो गई।''

रेलवे के कारण पारिस्थितिकी परिदृश्य में हुए बदलाव का सबसे स्पष्ट वर्णन क्लेगॉर्न की पुस्तक द फॉरेस्ट एण्ड गार्डेन्स ऑफ साउथ एशिया में मिलता है। उनका मानना था कि हिमालयी पहाड़ियाँ इमारती लकड़ियों से भरपूर थी, किन्तु अब वे रेलवे की अंतहीन माँगों के कारण 'काफी हद तक उजाड़ हो गई हैं।' इन पहाड़ियों पर पहले जहाँ वन हुआ करता था, वहाँ अब पेड़ों के काटे जाने के कारण बड़ी मात्रा में जमीन वृक्ष रहित हो गई। परिणामस्वरूप ये क्षेत्र जंगली जानवरों के लिए भी सुरक्षित नहीं रहें। इस तरह रेलवे की प्रगति ने 'पेड़–पौधों के सन्दर्भ में देश में जबरदस्त परिवर्तन किया।' भारत में रेलवे का काफी तेजी से विस्तार हुआ। 1860 में रेलवे लाइन की कुल लम्बाई 1349 किमी0 थी जो 1910 में बढ़कर 51,658 किमी0 हो गई। इस कारण भारी मात्रा में वनों की तबाही हुई और इसने मजबूती से यह तथ्य स्थापित किया कि भारत वन अनन्त नहीं है। भारतीय वनों को 'कम और हल्का करने वाली शक्तियों में रेलवे की आवश्यकताओं ने सबसे महत्वपूर्ण भूमिका अदा की।(क्लेहार्न,1860:60) 1862 में गवर्नर जनरल ने 1857 के विद्रोह तक के वन प्रशासन पूरी तरह नाकाम घोषित करते हुए वन प्रशासन के स्थापना की घोषणा की। इसके पीछे मुख्य उद्देश्य यह था कि यह विभाग विभिन्न रेलवे कम्पनियों के स्लीपरों की आवश्यकताओं को सुव्यवस्थित तरीके से पूरीा करें। गवर्नर जनरल के अनुसार, स्लीपरों के लिए लकड़ियों की आवश्यकता ने 'वनों के संरक्षण को एक महत्वपूर्ण प्रशासनिक प्रश्न बना दिया है।(ट्रेवर एण्ड स्मिथ,1923:05) (हालांकि रेलवे ने भारत के वन प्रबन्धन को आरम्भ करने और बढ़ावा देने में सर्वप्रमुख भूमिका निभाई।) एक अधिकारी ने यह टिपण्णी की कि भारत विशेषरूप से संयुक्त प्रान्त के शानदार वनों का निजी कम्पनियों द्वारा बहुत ही लापरवाह तरीके से उपयोग किया गया, और अगर किसी पर्यवेक्षण या निगरानी की व्यवस्था नहीं की गई, तो इन वनों के खत्म हो जाने की सम्भावना है।(बेवर,1902:7–8)

यह समस्या इसलिए भी गम्भीर थी कि क्योंकि सिर्फ तीन भारतीय पेड़–सागौन, सरबुआ और देवदार इतनी मजबूत इमारती लकड़ियाँ उपलब्ध कराते थे, जिनका उपयोग रेलवे स्लीपरों को बनाने में किया जा सकता था। सखुआ और सागौन प्रायद्वीपीय भारत में रेलवे पटरियों के नजदीकी क्षेत्रों में उपलब्ध थे। रेलवे निर्माण के आरम्भिक वर्षों में इनका अत्यधिक दोहन किया गया, जिसके चलते इस काम के लिए उत्तरी–पश्चिमी हिमालय के देवदार वनों का इस्तेमाल करना आवश्यक हो गया। वन विभाग के स्थापित होने के बाद के वर्षों में सतजल और यमुना नदी घाटियों से देवदार काफी तेजी से खत्म हो गया। 1869 से 1885 के बीच यमुना नदी घाटियों के वनों से 6,5000,000 देवदार स्लीपरों की आपूर्ति की गई।(हार्ले,1888)

1878 के अधिनियम में वनों के उपयोग पर राज्य का नियंत्रण स्थापित हो गया। आरक्षित वनों ने शुरूआत में रेलवे विस्तार में बहुमूल्य योगदान दिया और बाद के विश्व युद्वों में साम्राज्यवादी हितों को पूरा किया। इसके साथ ही वन विभाग ने पर्याप्त राजस्व भी एकत्रित किया। रेलवे नेटवर्क के कारण लकड़ियों को शहरी केन्द्रों तक ले जाना आसान हो गया इस तरह हिमालय के वनों से बांस, सखुआ और शंकुधर वृक्षों की कई प्रजातियों को औपनिवेशिक शासन द्वारा निर्मित पंजाब और संयुक्त प्रान्त तक लाया गया।(वाल्टन,1900) रेलवे अभी भी वनों की एक महत्वपूर्ण उपभोक्ता थी। एक समिति ने ज्यादा नजदीकी सहयोग का आग्रह करते हुए यह रेखाकिंत किया कि 'बहुत से मामलों में दोनों विभागों के हित एक जैसे हैं। भारत के वनों का रणनीतिक मूल्य सबसे पहले रेलवे नेटवर्क के निर्माण के सामने आया। विश्व युद्वों के दौरान ज्यादा प्रभावकारी तरीके से इसका महत्व साबित हुआ। 1914–18 के युद्व के दौरान पुलों, खम्भों, घाटों, भवनों, झोपड़ियों और नावों के निर्माण के लिए इमारती लकड़ियों और बांसों का प्रयोग किया गया। इस प्रकार व्यावसायिक इमारती लकड़ियों और राजस्व के दोहरे माँग को पूरा करने के लिए वन विभाग ने ज्यादा गहन रूप से वनों का दोहन करने के लिए परिवहन व्यवस्था विशेष रूप से रेलवे नेटवर्क को मजबूत करके सुदूरवन क्षेत्रों तक अपनी पहुँच बना ली। संयुक्त प्रान्त के एक वन अधिकारी ने यह दावा किया कि 'संचार के साधन में ऐसी नसे और धमकियाँ है, जिनकी मदद से वन राजस्व का प्रवाह होता है और आरम्भिक दिनों में ही विभाग जंगलों को गाड़ी की सड़कों और पथों को बनाने के लिए सक्रिय रहा है।(रावर्ट्स,1936,पृ015–16)

बहराल, औपनिवेशिक वानिकी का शायद सबसे गम्भीर नतीजा यह निकला कि वनों के आस–पास बसे समुदायों में मौजूद वनों के पारम्परिक संरक्षण और प्रबन्धन की व्यवस्थाओं का क्षरण हुआ। इसी तरह, अँग्रेज की भूमि नीति ने किसानों के विभेदीकरण को बढ़ाया और सामुदायिक संस्थाओं का क्षरण किया। अपनी स्वायत्तता खोने के बाद किसान को मजबूरन बाजार अर्थव्यवस्थाा के उपयोग के लिए उत्पादन करना पड़ा। इस तरह, वे बाजार अर्थव्यवस्था के भंवर में फँस गये। गौरतलब है कि पहले वन किसान घरों के लिए एक मध्यवर्ती स्थान का काम करता था। इससे किसान अपनी जीविका के महत्वपूर्ण तत्व हासिल करते थे। फिर भी, औपनिवेशिक नीति के बहुत से पारिस्थितिक नतीजे सामने आए। इनमें से बहुत से प्रभावों का ठीक से अन्दाजा भी नहीं लगाया जा सकता। संयुक्त प्रान्त में बड़े पैमाने पर सिंचाई का नतीजा कुछ क्षेत्रों में जल–भराव और भूमि की लवणता के रूप में सामने आया। इसके दोआब की अर्थव्यवस्था में अभूतपूर्व तनाव पैदा किया। संयुक्त प्रान्त में ग्रामीण दरिद्रता बढ़ने और 1920 के दशक में किसान सभाओं के उभार के पीछे छोटे स्तर की पारम्परिक व्यवस्थाओं का टुटना एक महत्वपूर्ण कारण था और इसका दोष रेलवे के विस्तार हेतु वनों की कटाई का होना था। इस प्रकार औपनिवेशिक वन नीति संचार के आधुनिक साधनों (विशेष रूप से रेलवे) के द्वारा वन–उत्पादकों से वंचित हुए लोगो को अनचाहे कार्य करने के लिए बाध्य किया।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि रेलवे ने भारतीय अर्थ व्यवस्था विशेष रूप संयुक्त प्रान्त की आर्थिक परिस्थिति के विकास को उस तरह बढ़ावा नहीं दिया जिस तरह यूरोप के औद्योगिकरण को दिया। हालाँकि कृषि को सापेक्ष प्राथमिकता दी जाती रही पर यह संवृद्विमुखी क्षेत्र बनी ही नहीं इसका कारण यह था कि अधिकांश लोगों का मानना था कि रेलों की अपेक्षा सिचाई अकालों को रोकने के लिए अधिक प्रभावशाली और विश्वसनीय उपचार था। रेलें देश के विभिन्न भागों में खाद्यान्न की उपलब्ध यात्रा के समान वितरण से अधिक कुछ नहीं कर सकती थी, दूसरी ओर सिचाई अपने आय में खाद्यान्न के उत्पादन में वृद्वि कर सकती थी। सिचाई कार्य आर्थिक दृष्टि से लाभप्रद है, वे 6 से प्रतिशत लाभ दे सकते हैं, जबकि रेलवे लगातार घाटा ही दिखाती आ रही है। बीसवीं सदी के प्रारम्भ में सरकार ने सिचाई की अपेक्षा ब्रिटिश व्यापारियों, उत्पादकों और निवेशकों के हितों की सुरक्षा तथा सेवा के लिए भारतीयों के हितों की बलि चढ़ाने की विदेशी शासकों की स्वार्थपूर्ण और गहरी प्रवृत्ति का ही परिणाम थी।

स्पष्ट है कि रेल नीति का निर्धारण भारतीय जनता के हितों के सन्दर्भ में नहीं हुआ था। यह तो उलटे भारतीय जनता की

आवश्यकताओं की बहुत दूर तक उपेक्षा ही करती थी। उसने रेल नीति के इस स्वरूप को इस प्रकार बताया कि व्यापार की आवश्यकताओं को उद्योग की आवश्यकताओं के अधीन बनाए। इसका उद्देश्य भारतीय उद्योग को प्रोत्साहित करना न हो न कि व्यापार आयात को उन्नत करना अधिक फसलों के उत्पादन को प्रोत्साहित करना हो न कि उनके व्यापक निर्यात को रेलों की अपने आप में उपयोगिता देश की उत्पादन शक्ति पर निर्भर है, अर्थात् राष्ट्रीय आर्थिकता और उद्योग द्वारा उनके उपयोग की क्षमता पर आश्रित है। जब तक रेलें राष्ट्रीय उद्योगों के अपेक्षाकृत अच्छे संगठन के लिए लाभप्रद अन्य अधिक महत्वपूर्ण साधनों के साथ नहीं ले पाती तब तक वे अकेले उस देश की प्रबल शक्तियों में योग नहीं दे सकती, जो अकेले ही उनकी व्यापक महत्ता की सुदृढ़ आधारशिला की व्यवस्था करता। तब और ज्यों ही देश का उद्योगीकरण हो जाएगा तब आधिकाधिक रेलवे नेटवर्क का विस्तार हो सकता था। परन्तु संयुक्त प्रान्त का क्षेत्र कृषि प्रधान है, तेज गति से रेल नेटवर्कों का निर्माण सर्वथा निरर्थक ही है। इसके विपरीत यदि संयुक्त प्रान्त में उद्योग और व्यापार का विकास होता तो रेलों का विकास स्वरूप और लाभप्रद भी होता और जनसमर्थन का अधिकारी बनता। जैसाकि रेलवे अन्य देशों में औद्योगिक क्रान्ति को आगे ले जाने में सहायक बनी वही रेलवे भारत में औद्योगिक आन्दोलन को उदासीन बनाने में भारत के प्राकृतिक संसाधनों के शोषण में तथा विदेशी व्यापार और उद्यम को प्रोत्साहन देने में सहायता दी।

फिर भी रेलवे ने सामानों और लोगों को परिवहन की एक सस्ती और निरापद तथा द्रूत गति प्रणाली प्रदान की। यात्राओं में लगने वाले समय काफी कम हो गया। एक जगह से दूसरी जगह काफी कम समय में माल और यात्री पहुँचने लगे। अब आवागमन संयुक्त प्रान्त में सारे साल सम्भव हो गया। जबकि पूर्व में रेलवे के विकास के पहले सड़क और जल परिवहन का इस्तेमाल पूरे साल सम्भव नहीं था। बरसात के दिनों में उनकी यात्रा नहीं हो पाती थी। रेलवे में नेटवर्क के समानान्तर सड़कों के और संयुक्त प्रान्त के विभिन्न भागों को जोड़ने वाले कुछ दुसरी राजनीतिक सड़कों के निर्माण को भी बढ़ावा दिया। इससे भारतीय बाजार का काफी हद तक एकीकरण हुआ जिसके फलस्वरूप जनता और सामान दोनों के लिए यातायात का एक सस्ता साधन उपलब्ध हुआ, जिसका लाभ आगे चलकर आजादी के बाद, भारतीय व्यापार को मिला और अंतिम बात रेलवे ने भारतीय समाज और राष्ट्र पर महत्वपूर्ण सामाजिक और सांस्कृतिक प्रभाव डाला, पर ये सब ब्रिटिश साम्राज्यवाद के अप्रत्याशित परिणाम थे।

REFERENCES

कीर इयान जे0 : *दी डार्क साइड आफ दी फोर्स : मिस्टेक्स मिसमैनेजमेंट एण्ड दी मालफिसेन्स इन अर्ली रेलवेज आफ दी ब्रिटिश इण्डियन इम्पायर*

क्लेहार्न, एच0 (1860) *फारेस्ट एण्ड गार्डेन्स आफ साउथ इण्डिया,* लंदन, डव्ल्यू एच0 एलेन

मिश्रा, मारिया : *विजनेस रेस एण्ड पॉलिटिक्स इन ब्रिटिश इण्डिया* 1850–1960 इन टॉमिलसन बी आर : इण्डिया एण्ड दी ब्रिटिश एम्पायर 1880–1935

रिवेनट्राप, बी0 (1900) *फारेस्टी इन ब्रिटिश इण्डिया,* कलकत्ता गवर्नमेंट प्रेस

फ्रिट्ज लेमैन : *एम्पायर एण्ड इण्डस्ट्री : लोकोमोटिव विल्डिंग इण्डस्ट्री इन कनाडा एण्ड इण्डिया,* 1850–1939

लिटन एल *सोशल चेन्ज एण्ड दी रेलवे इन नार्थ इण्डिया* 1845–1914

हर्ड जे0 (1982) *रेलवेज इन दी कैम्ब्रिज इकोनामिक हिस्ट्री आफ इण्डिया* वाल्यू0 2 संपा दिनेश कुमार

हर्ले , एन (1888) *वर्किंग प्लान आफ दी टिहरी गढ़वाल लीज्ड फारेस्ट जौनसर फारेस्ट डिवीजन,* इलाहाबाद, गवर्नमेंट प्रेस

भट्टाचार्य एसः *फाइनेन्सियल फाउण्डेसन्स आफ दी ब्रिटिश राज*

पीयर्सन, जी,एफ (1870) *देवदार फोरेस्ट आफ जान्स अर बवर सलेक्शन फ्राम दी रिकार्ड्स आफ दी गवर्नमेंट आफ दी नार्थ वेस्टर्न प्रोविन्स एण्ड सिरीज* वाल्यू 2 इलाहाबाद

पॉल जी पी (1871) *फेलिंग टिम्बर इन दी हिमालय* , लाहौर पंजाब प्रिंटिंग कं0

रावर्टसन फोर्ड एफ सी (1936): *आवर फारेस्ट,* इलाहाबाद, गवर्नमेंट प्रेस

स्टीफेन, आर एम (1847) *इन रेलवे कन्स्टक्शन इन इण्डियाः सलेक्टेड डाक्यूमेंट्स* वाल्यू0 1, 1832–1852

स्टेबिंग ई पी (1922) *दी फारेस्ट आफ इण्डिया* वाल्यू0 1,2,3, ब्रदन, जांन लेन

व्हाइटकांब ई (1971) *एग्रेरियन कण्डीशन्स इन नार्थन इण्डिया* वाल्यू 1 : दी यूनाइटेड प्राविन्स अण्डर ब्रिटिश रूल, 1850–1900, बर्कले, यूनिवर्सिटी आफ कैलिफोर्निया

वेबर, टी डब्ल्यू (1902) *दी फारेसट आफ अपर इण्डिया एण्ड देयर इनहैबिटेन्टस,* लंदन एडवर्ड एर्नाल्ड

वाल्टन एच0जी0 (1900) *ब्रिटिश गढ़वाल : ए गजेटियर,* इलाहाबाद, गवर्नमेंट प्रेस

ट्रेवर सी जी एण्ड स्मिथ इं ए (1923) *प्रैक्टिकल फोरेस्ट मैनेजमेंट,* गवर्नमेंट प्रेस इलाहाबाद

टूली, मार्क *:ए व्यू ऑफ इण्डियन रेलवेज*